International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 27-04-2026, Accepted: 28-05-2026, Published: 12-06-2026
Volume 12, Issue 2, 2026, Page No. 174-175

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के ललित निबंधों में सामयिक–बोध

धीरज कुमार सोनी
शोधार्थी, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राज्यस्थान, भारत
DOI: https://doi.org/10.66856/ijhr.2026.12.2.12159

सारांश
यह शोध–पत्र हिंदी के प्रसिद्ध मानवतावादी साहित्यकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के ललित निबंधों में निहित सामयिक–बोध का विस्तृत और समग्र अध्ययन प्रस्तुत करता है। द्विवेदी जी ने अपने निबंधों के माध्यम से भारतीय संस्कृति, इतिहास, परम्परा, समाज, राजनीति और मानवीय मूल्यों को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है कि उनका साहित्य अपने समय का जीवंत दस्तावेज बन गया है। उनके निबंधों में अतीत की सांस्कृतिक चेतना और वर्तमान जीवन की जटिलताओं का सशक्त समन्वय दिखाई देता है। वे समय की बदलती प्रवृत्तियों, सामाजिक विघटन, नैतिक अवमूल्यन, सांस्कृतिक विस्मृति और मानवीय संवेदनहीनता पर गहरी दृष्टि डालते हैं। इस शोध–पत्र में उनके प्रमुख निबंध–संग्रहों के आधार पर सामयिक चेतना, सामाजिक यथार्थ, सांस्कृतिक पुनर्जागरण, राष्ट्रीय अस्मिता तथा मानवीय सरोकारों का विश्लेषण किया गया है।

मूल शब्दः ललित निबंध, सामयिक–बोध, सांस्कृतिक चेतना, भारतीयता, सामाजिक यथार्थ, मानवीय मूल्य, परम्परा, आधुनिकता, राष्ट्रीय अस्मिता, लोकचेतना, इतिहास–दृष्टि, वैचारिकता, सामाजिक परिवर्तन, नैतिकता, सांस्कृतिक पुनर्जागरण, मानवीय संवेदना, जीवन–दृष्टि, सामाजिक उत्तरदायित्व

हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी निबंध साहित्य के ऐसे शिखर रचनाकार हैं जिन्होंने ललित निबंध को केवल भावात्मक गद्य न रहने देकर उसे सांस्कृतिक विमर्श, ऐतिहासिक चेतना और सामाजिक विश्लेषण का सशक्त माध्यम बना दिया। उनके निबंधों में विचार और संवेदना का अद्भुत संतुलन मिलता है। वे न तो शुष्क बौद्धिकता के पक्षधर हैं और न ही केवल भावुकता के। उनका लेखन जीवन के साधारण अनुभवों से असाधारण अर्थ ग्रहण करता है और उन्हें इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि पाठक सहज रूप से गहरे चिंतन की ओर प्रवृत्त हो जाता है। द्विवेदी जी का मानना है कि "मनुष्य की जीवनी शक्ति बड़ी निर्मम है, वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती चली आ रही है"[1] अर्थात संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है; उसमें जीवन का सौन्दर्य और संघर्ष दोनों समाहित रहते हैं। यह कथन उनके संपूर्ण निबंध साहित्य की मूल चेतना को स्पष्ट करता है।

द्विवेदी जी के निबंधों में सामयिक–बोध का अर्थ केवल तत्कालीन घटनाओं का वर्णन करना नहीं है, बल्कि समय की प्रवृत्तियों को समझना और समाज के भीतर चल रही सूक्ष्म हलचलों को पहचानना है। वे अपने समय की मानसिकता, सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक परिवर्तनों और नैतिक द्वंद्वों को अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से देखते हैं। आधुनिकता की अंधी दौड़ में मनुष्य जिस प्रकार अपनी जड़ों से कटता जा रहा है, उस स्थिति पर वे गंभीर चिंता व्यक्त करते हैं। उनका स्पष्ट मत है कि परम्परा जड़ नहीं होती, वह निरन्तर प्रवहमान जीवनधारा है, जो प्रत्येक युग में नये अर्थ ग्रहण करती रहती है। इस प्रकार वे परम्परा को गतिशील मानते हुए उसे वर्तमान जीवन से जोड़ते हैं।

द्विवेदी जी का सामयिक बोध तत्कालीन सामाजिक समस्याओं तक सीमित नहीं है, बल्कि वह मनुष्य की शाश्वत सांस्कृतिक चेतना से जुड़ा हुआ है। वे अपने निबंध "नाखून क्यों बढ़ते है" में कहते है "बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो।"[2] इस प्रकार अपने निबंधों में उन्होंने हिंसा, स्वार्थ, भौतिकवाद और मानवीय मूल्यों के संकट को जिस प्रकार रेखांकित किया है, वह आज भी उतना ही प्रासंगिक है।

उनके निबंधों में इतिहास–बोध भी सामयिकता से गहराई से जुड़ा हुआ है। वे इतिहास को केवल अतीत का विवरण न मानकर वर्तमान की समझ का आधार मानते हैं। उनके अनुसार "इतिहास केवल घटनाओं का लेखा–जोखा नहीं, वह मनुष्य की चेतना के विकास की कहानी है।"[3] इस दृष्टि से वे अतीत की घटनाओं, व्यक्तित्वों और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं को वर्तमान समाज के संदर्भ में पुनः व्याख्यायित करते हैं। उनके निबंध पाठक को यह अनुभव कराते हैं कि वर्तमान को समझने के लिए अतीत की जड़ों को जानना आवश्यक है।

द्विवेदी जी के ललित निबंधों में सामाजिक यथार्थ का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण मिलता है। वे समाज में व्याप्त विसंगतियों, रूढ़ियों, अंधविश्वासों और सामाजिक असमानताओं पर तीखा प्रहार करते हैं, परंतु उनका स्वर आक्रोशपूर्ण न होकर विवेकपूर्ण होता है। वे समाज को तोड़ने के बजाय सुधारने में विश्वास रखते हैं। उनका मानना है कि साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि समाज को दिशा देना है। वे लिखते हैं कि "लोकजीवन से कटकर कोई भी साहित्य दीर्घजीवी नहीं हो सकता।"[4] यह कथन उनके जनोन्मुख दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है। द्विवेदी जी एक मानवतावादी साहित्यकार है मनुष्य को उन्होंने अपने निबंधों के केंद्र में रखा है अपने निबंध 'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है' के भीतर वे यह लिखते कि– "मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदुःखकातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है। मैं अनुभव करता हूँ कि हम लोग एक कठिन समय के भीतर से गुजर रहे हैं। आज नाना भाँति के संकीर्ण स्वार्थों ने मनुष्य को कुछ ऐसा अन्धा बना दिया है कि जाति–धर्म–निर्विशेष मनुष्य के हित की बात सोचना असंभव–सा हो गया है। ऐसा लग रहा है कि किसी विकट दुर्भाग्य के इंगित पर दलगत स्वार्थ से प्रेम ने मनुष्यता को दबोच लिया है। दुनिया छोटे–छोटे संकीर्ण स्वार्थों के आधार पर अनेक दलों में विभक्त हो गई है। अपने दल के बाहर आदमी संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। उसके रोने–गाने तक पर असदुद्देश्य का आरोप किया जाता है। उसके तप और सत्य–निष्ठा का मजाक

उड़ाया जाता है। उसके प्रत्येक त्याग और बलिदान के कार्य में भी 'चाल' का संधान पाया जाता है और अपने–अपने दलों में ऐसा करने वाला सफल नेता भी मान लिया जाता है, परन्तु मेरा विश्वास है कि ऐसा करने वाला आदमी सबसे पहले अपना ही अहित करता है। बड़े–बड़े राष्ट्रनायक जब अपनी विराट् अनुचरवाहिनी के साथ इस प्रकार का गंदा प्रचार करते हैं, तो ऊपर ऊपर से चाहे जितनी भी सफलता उनके पक्ष में आती हुई क्यों न दिखाई दे, इतिहास–विधाता का निष्ठुर नियम–प्रवाह भीतर–ही–भीतर उनके स्वार्थों का उन्मूलन करता रहता है। इतिहास शक्तिशाली व्यक्तियों और राष्ट्रों की चिताभूमि को कुचलता हुआ आगे बढ़ रहा है, फिर भी गंदे तरीके सुधारे नहीं गए हैं, बल्कि उनको और भी 'कौशलपूर्ण और प्रभावशाली बनाया जाता रहा है। जो लोग द्रष्टा हैं, वे इस गलती को समझते हैं; पर उनकी बात मदमत्त व्यक्तियों की ऊँची गद्दियों तक नहीं पहुँच पाती। संसार में अच्छी बात कहने वालों की कमी नहीं है, परन्तु मनुष्य के सामाजिक संगठन में ही कहीं कुछ ऐसा बड़ा दोष रह गया है, जो मनुष्य को अच्छी बात सुनने और समझने से रोक रहा है। इसीलिए आज की सबसे बड़ी समस्या यह नहीं है कि अच्छी बात कैसे कही जाए; बल्कि यह है कि अच्छी बात को सुनने और मानने के लिए मनुष्य को कैसे तैयार किया जाए?[5]

हजारी प्रसाद द्विवेदी के इस निबंधांश में उनका गहरा सामयिक–बोध स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ है। उन्होंने अपने समय के सामाजिक विघटन, दलगत स्वार्थ, नैतिक पतन और मानवीय संवेदनहीनता को अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से पहचाना है। द्विवेदी ने यह संकेत किया है कि आधुनिक मनुष्य संकीर्ण हितों में इतना उलझ गया है कि मानवता और सत्य जैसे मूल्य पीछे छूटते जा रहे हैं। द्विवेदी जी ने अपने निबंध के माध्यम से बताते है कि आज के युग में साहित्य कल्पनावासी बनकर नहीं लिखा जा सकता, साहित्यकार का यह कर्तव्य है कि पाठक को अपने समय के यथार्थ से अवगत कराए अगर साहित्यकार यथार्थ दृष्टि से विमुख होकर केवल कल्पनजीवी बना रहता है तो ये सच्चे साहित्यकार का लक्षण नहीं है। इस प्रकार उनके निबंध केवल साहित्यिक चिंतन नहीं, बल्कि तत्कालीन युग–संकट और सामाजिक परिस्थितियों के सशक्त दर्पण बन जाते है।

उनके निबंधों में मानवीय संवेदना अत्यंत सशक्त रूप में उपस्थित है। वे मनुष्य को उसकी मूल मानवीयता के साथ देखने के पक्षधर हैं। आधुनिक सभ्यता के भौतिक वैभव के पीछे छिपी संवेदनहीनता उन्हें विचलित करती है। वे मनुष्य के भीतर करुणा, सहानुभूति और नैतिकता के विकास को आवश्यक मानते हैं। उनका कथन है कि "मनुष्य का सच्चा विकास बाहरी वैभव से नहीं, उसकी आन्तरिक उदात्तता से मापा जाना चाहिए।"[6] यह विचार उनके मानवीय दृष्टिकोण को सुदृढ़ आधार प्रदान करता है।

द्विवेदी जी भारतीय संस्कृति के महान व्याख्याता हैं। उनके निबंधों में भारतीय जीवन–दृष्टि, लोक परम्पराओं, धार्मिक मान्यताओं और सांस्कृतिक मूल्यों का गहन विश्लेषण मिलता है। वे भारतीय संस्कृति को समन्वयवादी संस्कृति मानते हैं। विभिन्न धर्मों, जातियों, भाषाओं और परम्पराओं के बीच सामंजस्य स्थापित करना भारतीय संस्कृति की विशेषता है। इस संदर्भ में वे लिखते हैं कि "भारतीय संस्कृति का मूल स्वर समन्वय है; उसने विरोधों को भी साधकर जीवन का मार्ग प्रशस्त किया है।"[7] यह विचार आज के विघटनकारी परिवेश में अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होता है।

उनके निबंधों में राजनीतिक चेतना भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वे राजनीति को जनसेवा का माध्यम मानते हैं, परंतु जब राजनीति स्वार्थ, भ्रष्टाचार और अवसरवादिता का साधन बन जाती है तो वे उसकी आलोचना करने से नहीं चूकते। स्वतंत्रता के बाद के राजनीतिक परिवेश में नैतिक मूल्यों के ह्रास पर उन्होंने गहरी चिंता व्यक्त की है। वे मानते हैं कि राजनीति यदि लोकहित से विमुख हो जाए तो राष्ट्र का संतुलित विकास संभव नहीं है। उनके निबंधों में यह चेतावनी बार–बार व्यक्त होती है कि सत्ता का उद्देश्य समाज की सेवा होना चाहिए, न कि व्यक्तिगत लाभ।

द्विवेदी जी के निबंधों में शिक्षा और संस्कृति के संबंध पर भी गंभीर विचार मिलता है। वे ऐसी शिक्षा के पक्षधर हैं जो मनुष्य को केवल रोजगार योग्य न बनाए, बल्कि उसे संस्कारित, संवेदनशील और नैतिक बनाए। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को उसकी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ना और उसमें विवेकपूर्ण दृष्टि का विकास करना है। वे साहित्य और शिक्षा के माध्यम से समाज में नैतिक चेतना जागृत करना चाहते हैं।

उनकी भाषा शैली अत्यंत प्रभावशाली, परिमार्जित और सौंदर्यपूर्ण है। वे गूढ़ विषयों को भी सरल, सरस और साहित्यिक भाषा में प्रस्तुत करते हैं। उनकी शैली में कहीं–कहीं काव्यात्मकता का पुट मिलता है तो कहीं गहन दार्शनिकता दिखाई देती है। वे उदाहरणों, रूपकों और सांस्कृतिक संकेतों के माध्यम से अपने विचारों को सजीव बना देते हैं। यही कारण है कि उनके निबंध पाठक के मस्तिष्क और हृदय दोनों को प्रभावित करते हैं।

द्विवेदी जी के निबंधों का एक महत्वपूर्ण पक्ष उनका सांस्कृतिक पुनर्जागरण का दृष्टिकोण है। वे भारतीय समाज को उसकी सांस्कृतिक जड़ों से पुनः जोड़ने का प्रयास करते हैं। उनका मानना है कि सांस्कृतिक विस्मृति समाज को दिशाहीन बना देती है। वे अतीत की गौरवपूर्ण परम्पराओं को वर्तमान जीवन से जोड़ते हुए सांस्कृतिक नवजागरण का संदेश देते हैं। उनका साहित्य भारतीय अस्मिता की पहचान कराने वाला साहित्य है।

निष्कर्ष

अतः समग्र विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि, द्विवेदी जी के ललित निबंधों में सामयिक–बोध अत्यंत व्यापक, गहन और बहुआयामी है। उन्होंने अपने निबंधों में समय की नब्ज को पहचाना, समाज की समस्याओं को समझा, संस्कृति के मूल तत्वों को स्पष्ट किया और मनुष्य को उसकी मानवीयता का बोध कराया। उनका निबंध साहित्य केवल साहित्यिक उपलब्धि नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना का महत्वपूर्ण दस्तावेज है। उनके विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने उनके समय में थे।

संदर्भ

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी — अशोक के फूल, लोकभारती प्रकाशन छठा संस्करण 2024 पृष्ठ सं.–14
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी — कल्पलता, राजकमल प्रकाशन संस्करण 2021 पृष्ठ सं–10
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी — कुटज, लोकभारती प्रकाशन संस्करण 2014 , पृष्ठ सं – 41
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी — विचार और प्रवाह, राजकमल प्रकाशन संस्करण 2003 पृष्ठ सं–38
5. हजारी प्रसाद द्विवेदी — अशोक के फूल, वाणी प्रकाशन छठा संस्करण पृष्ठ सं –143
6. हजारी प्रसाद द्विवेदी — आलोक पर्व, राजकमल प्रकाशन
7. हजारी प्रसाद द्विवेदी — मध्यकालीन धर्म साधना, लोकभारती प्रकाशन संस्करण 2019 पृष्ठ सं –18
8. भारतीय साहित्य के निर्माता हजारी प्रसाद द्विवेदी– विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, साहित्य अकादमी प्रकाशन
9. कुमारी पी. वासवदत्ता युगवाणी प्रकाशन संस्करण 2006